



THE TIMES OF INDIA

Date: 29-08-18

Asiad Green Shoots

Indian youngsters are breaking through at the acme of sports

TOI Editorials



Neeraj Chopra lived up to his growing reputation and created Asian Games history by bagging the gold for India in the javelin event. The last time India finished on the javelin podium at this level was at the 1982 Asian Games in New Delhi when Gurtej Singh had won the bronze. But Neeraj has proved that he is in a different class. His gold winning throw of 88.06m not only bettered his own national record but was also the sixth best throw of the season. With Neeraj now both the Asian and Commonwealth Games champion in the same year – a feat not achieved by an Indian athlete since Milkha Singh in 1958 –

expectations of an Olympic medal from him in Tokyo 2020 will mount.

What's interesting to note is that 20-year-old Neeraj appears to be one among a crop of young Indian athletes who have started to make their mark at the international level. At this Asian Games itself, we have had 18-year-old Hima Das and 23-year-old Muhammed Anas winning the silver in the women's and men's 400m respectively. Then 24-year-old Vinesh Phogat became the first Indian woman to win a wrestling gold at this level. And 16-year-old Saurabh Chaudhary won gold in the 10m air pistol event.

The success of these youngsters shows that India's sporting system, despite many challenges, is delivering to some extent. Of course, this needs to be expanded further if we are to taste Olympic success. Nonetheless our Asian Games performance so far, particularly in track and field, does inspire confidence. Add to this help from initiatives like the Olympic Gold Quest – which helped shooter Rahi Sarnobat bag the gold in the 25m pistol event this time – and we are looking at promising talents breaking through at the acme of sports. But these efforts need to be sustained if the sporting green shoots are to convert into Olympic glory.

Date: 29-08-18



दैनिक भास्कर

संघ के मंच से राहुल गांधी के संवाद पर है देश की नजर

संपादकीय

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने अपने यूरोपीय दौर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की तुलना मिस्र के विवादित संगठन मुस्लिम ब्रदरहुड से करके खलबली मचाई है। उसी का परिणाम है कि संघ उन्हें आगामी 17 सितंबर से 19 सितंबर के बीच भारत के भविष्य पर होने वाले सम्मेलन में आमंत्रित करना चाहता है। हालांकि, अभी तक आमंत्रित नहीं किया गया है। इसी के साथ संघ के पदाधिकारी अरुण कुमार के उस बयान पर भी बहस शुरू हो गई है कि जो भारत को नहीं जानते, वे संघ को क्या समझेंगे। राहुल गांधी ने संघ की तुलना जिस संगठन से की है, वह भी लगभग उसी समय गठित हुआ था जब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ बना था। भारतीय राजनीति मिस्र की राजनीति से अलग है। भारत की प्राचीन परंपरा मिस्र की प्राचीन परंपरा से भिन्न रही है। इसे समझने और समझाने का प्रयास न तो किसी एक व्याख्यान में हो सकता है और न ही फेसबुक और व्हाट्सएप की बहसों में संभव है। टीवी चैनलों और विभिन्न संगठनों के विचारकों की तीखी बहसों में भी वह संभव नहीं है।

भारत का विचार क्या है, इसका एक स्वीकार्य रूप स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में प्रकट हुआ था, जिसे विभाजन की त्रासदी और बाद में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विमर्श ने काफी कमजोर कर दिया। इसके बावजूद अगर राहुल गांधी महात्मा गांधी के हिंद स्वराज और नेहरू के डिस्कवरी ऑफ इंडिया के माध्यम से भारत के विचार की व्याख्या करना और उसे स्वीकार्य करवाना चाहते हैं तो उन्हें उसे लेकर संघ के कार्यक्रम में जाना चाहिए और अपनी बात रखनी चाहिए। ऐसा हुआ तो पूरा देश उन्हें देखेगा। संवाद और सतत संवाद भारतीय संस्कृति का प्रधान गुण रहा है। भारत का भविष्य संवाद करते रहने और उदारता विकसित करने में है। संघ के मंच से ही पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने संवाद की नई शुरुआत की थी। संघ और राहुल गांधी को यह अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि एक-दो चुनावों और एक-दो भाषणों से भारत के विचार का निर्धारण नहीं होना है। भारत एक लघु विश्व है, जहां तमाम जातियां, संस्कृतियां और धर्म मिलकर रहने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इसलिए भारत का विचार अगर डूबेगा तो दुनिया भी सभ्यताओं के संघर्ष में विनष्ट हो जाएगी।



खतरे में डब्लूटीओ

अमेरिका अन्य देशों से मुक्त व्यापार का मुकाबला करने में असफल

डॉ. भरत झुनझुनवाला

एक समय अमेरिका विश्व व्यापार संगठन यानी डब्लूटीओ की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभा रहा था, लेकिन आज अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप उसी डब्लूटीओ को नुकसानदेह बता रहे हैं। इसे समझने के लिए पहले मुक्त व्यापार के सिद्धांत को समझें। यह सिद्धांत यही है कि हर एक क्षेत्र किसी खास वस्तु के उत्पादन में महारत रखता है। जैसे भुसावल में केले का उत्पादन सस्ता पड़ता है और मेरठ में चीनी का। दोनों के लिए लाभप्रद है कि भुसावल केले का उत्पादन करके मेरठ को भेजे और मेरठ चीनी का उत्पादन कर उसे भुसावल भेजे। इससे दोनों को केला और चीनी सस्ते मिल जाते हैं, लेकिन अब दूसरी स्थिति को समझें, जिसमें अमेरिका लड़ाकू विमान सस्ता बनाता है और भारत दूध का उत्पादन सस्ता करता है। मुक्त व्यापार के सिद्धांत के अनुसार अमेरिका को लड़ाकू विमानों का निर्यात करना चाहिए और भारत को दूध का। अब मान लीजिए कि अमेरिका लड़ाकू विमानों का दुनिया में इकलौता उत्पादक है और उसके एवज में वह मनचाहा दाम चाहता है। ऐसे में भारत के हित में यही होगा कि वह अपने देश में ही लड़ाकू विमान बनाए। मुक्त व्यापार का सिद्धांत तब नाकाम हो जाता है जब किसी विशेष देश का किसी माल पर एकाधिकार होता है जैसे लड़ाकू विमान के मामले में अमेरिका का है।

1990 के दशक में अमेरिका में नए तकनीकी आविष्कार हो रहे थे जैसे माइक्रोसॉफ्ट ने विंडोज सॉफ्टवेयर बनाया, सिस्को ने राउटर सिस्टम बनाए, एचपी ने प्रिंटर इत्यादि बनाए। अमेरिका इन एकाधिकार वाली वस्तुओं को दुनियाभर में बेचना चाहता था। तब उसके लिए मुक्त विश्व व्यापार दोहरे लाभ का सौदा था। एक तरफ विंडोज सॉफ्टवेयर जैसे एकाधिकार वाले माल को अमेरिका मुंहमांगे दाम पर बेचकर दुनियाभर से लाभ कमाता था। दूसरी ओर भारत से सस्ती चीनी का आयात करके लाभ उठाता था। इसीलिए अमेरिका ने उस समय मुक्त व्यापार की जोरशोर से पैरवी की और डब्लूटीओ को बनाने में अहम भूमिका निभाई थी। पिछले कुछ समय में हालात बदल गए हैं। अब विंडोज जैसे सॉफ्टवेयर, सिस्को के राउटर या प्रिंटर जैसे माल तमाम देश बनाने लगे हैं। अमेरिका के पास एकाधिकार वाले उत्पाद कम रह गए हैं। ऐसे में अमेरिका के लिए विश्व व्यापार घाटे का सौदा हो गया है। एकाधिकार वाली वस्तुओं की संख्या कम होने से उसके पास महंगा माल बेचने के आज कम अवसर हैं। अब अमेरिका की स्थिति भुसावल और मेरठ जैसी हो गई है। अमेरिका सेब का उत्पादन करके भारत को भेज सकता है और भारत चीनी का उत्पादन कर अमेरिका को भेज सकता है। इस प्रकार का विश्व व्यापार वास्तव में दोनों देशों के लिए लाभप्रद है, लेकिन इस स्थिति में अमेरिका और भारत केश्रमिकों के वेतन भी बराबर हो जाएंगे।

जैसे अमेरिका में सेब के उत्पादन में यदि श्रमिक की दिहाड़ी 6,000 रुपये है और भारत के कुल्लू में श्रमिक की दिहाड़ी 400 रुपये है तो भारत का सेब अमेरिका के मुकाबले सस्ता पड़ेगा और अमेरिका का सेब भारत में नहीं बिक पाएगा।

खुले विश्व व्यापार का तार्किक परिणाम यह होगा कि संपूर्ण विश्व में वेतन भी बराबर होंगे। यदि ऐसा होता है तो विकसित देशों के वर्तमान में ऊंचे वेतन नीचे आएंगे जो अमेरिका को स्वीकार नहीं हैं। इसलिए अमेरिका चाहता है कि अब यह विश्व व्यापार से पीछे हट जाए जिससे भारत का सस्ता सेब और सस्ती चीनी, अमेरिका में प्रवेश न करे और अमेरिका के सेब उत्पादक अपने श्रमिकों को पहले की ही तरह ऊंचा वेतन देते रहें। इसी सोच के तहत अमेरिका ने बीते दिनों भारत और चीन से आयात होने वाले इस्पात पर भारी आयात कर लगाया। भारत में इस्पात का उत्पादन सस्ता पड़ता है, क्योंकि यहां श्रमिकों के वेतन कम हैं। ट्रंप ने भारत से आयात होने वाले इस्पात पर आयात कर इसलिए बढ़ाए ताकि अमेरिका के इस्पात उत्पादकों का धंधा चौपट न होने पाए। अमेरिका का मुक्त व्यापार से पीछे हटना यह बताता है कि अब वहां नई तकनीकों का सृजन कम हो रहा है। अमेरिका को मुक्त व्यापार में अब विश्व के तमाम देशों से टक्कर लेनी पड़ रही है जिसमें वह असफल हो रहा है। अपने मंतव्य को पूरा करने के लिए राष्ट्रपति ट्रंप ने डब्लूटीओ को ही खंडित करने की रणनीति बना ली है।

डब्लूटीओ के नियमों में व्यवस्था है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर कोई भी देश किसी विशेष माल पर आयात कर लगा सकता है। इस प्रावधान का उपयोग करते हुए अमेरिका ने भारत में उत्पादित इस्पात पर आयात कर बढ़ाया, लेकिन यह भी स्पष्ट है कि इस्पात के उत्पादन में राष्ट्रीय सुरक्षा का कोई पेंच नहीं है। अमेरिका अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए मनचाही मात्रा में इस्पात का उत्पादन कर सकता है। उसके लिए भारत से इस्पात के आयात का कोई संकट पैदा नहीं होता है, लेकिन राष्ट्रपति ट्रंप ने राष्ट्रीय सुरक्षा को ढाल के रूप में उपयोग करते हुए भारत से आयातित इस्पात पर आयात कर बढ़ा दिया। उन्होंने एक कानून बनाने का प्रस्ताव रखा है जिसके अंतर्गत डब्लूटीओ के नियमों के बावजूद अमेरिकी सरकार उत्पादों पर मनचाहे आयात कर लगा सकेगी। डब्लूटीओ संधि करते समय सभी देशों ने अपने द्वारा लगाए जाने वाले अधिकतम आयात कर की सीमा निर्धारित कर दी थी। अब ट्रंप ने नया कानून बनाकर उस संधि को पलटने की योजना बनाई है। यदि अमेरिका ने पूर्व में डब्लूटीओ को आश्वासन दे रखा है कि वह किसी विशेष उत्पाद पर एक सीमा तक ही आयात कर लगाएगा तो अब वह उससे ज्यादा आयात कर लगाने के लिए डब्लूटीओ की मूल भावना के विपरीत कानून बनाने की तैयारी कर रहा है।

राष्ट्रपति ट्रंप ने डब्लूटीओ की भावना के खिलाफ एक और कदम उठाया है। डब्लूटीओ में देशों के बीच कोई विवाद उठने पर उसकी अपील डब्लूटीओ की अपीलीय व्यवस्था में की जाती है। राष्ट्रपति ट्रंप ने अपीलीय व्यवस्था में नए जजों की नियुक्ति पर सहमति नहीं दी है। वहां जजों की संख्या कम होती जा रही है और शीघ्र ही अपीलीय व्यवस्था में एक भी जज नहीं रह जाएगा। ऐसे में अपीलीय व्यवस्था निरस्त हो जाएगी और डब्लूटीओ के दायरे में विवादों को हल करने का कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। तब अमेरिका समेत हर देश खुलकर डब्लूटीओ के नियमों का उल्लंघन कर सकेगा, क्योंकि इस मामले में अपील ही नहीं हो पाएगी। वाणिज्य मंत्री सुरेश प्रभु ने सही कदम उठाते हुए तमाम देशों को आमंत्रित किया था कि डब्लूटीओ पर नई पहल की जाए, लेकिन भारत अथवा किसी दूसरे विकासशील देश द्वारा की गई इस पहल का सफल होना लगभग असंभव है। इसका कारण यह है कि विश्व व्यापार मूलतः विकसित देशों के लिए अब उतना लाभदायक नहीं रह गया है। विश्व अर्थव्यवस्था संपूर्ण विश्व में श्रम के एक ही वेतन की ओर बढ़ रही है जो कि विकसित देशों को स्वीकार नहीं है। इसलिए विश्व अर्थव्यवस्था में मुक्त व्यापार के अंत की आशंका ही अधिक दिखती है।

Date: 29-08-18

बिज़नेस स्टैंडर्ड

जानकारियों से भरे खजाने हैं सरकारी गजेटियर

विवेक देवरॉय

भारत में सबसे पुराना कानून कौन है? कई पुराने कानूनों को खत्म किया जा चुका है। फिर भी भारत में मौजूद सबसे पुराना कानून 1836 का है। बंगाल जिला अधिनियम के तौर पर चर्चित इस कानून में महज एक पंक्ति ही है। इस कानून के मुताबिक 'पश्चिम बंगाल के किसी भी हिस्से में नए जिलों के गठन की शक्ति राज्य सरकार के पास होगी। नए जिले बनाने के लिए सरकारी गजट में अधिसूचना जारी करनी होगी।' हालांकि इस कानून का यह मौलिक आख्यान न होकर मौजूदा स्वरूप है। इस कानून में 1874, 1903, 1920, 1948 और 1950 में संशोधन किए गए। सवाल उठता है कि जब पुराने कानूनों को समाप्त किया जा रहा है तो फिर यह कानून अभी तक क्यों चला आ रहा है? इसका ताल्लुक संविधान के अनुच्छेद 372(1) के तहत केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच किए गए शक्ति विभाजन से है। अगर बंगाल जिला अधिनियम को खत्म किया जाना है तो वह पश्चिम बंगाल की विधानसभा ही कर सकती है, देश की संसद नहीं। संभवतः नए जिलों के गठन के लिए ऐसे कानून की जरूरत है तभी तो बांग्लादेश ने इस कानून को अपने यहां अब भी लागू किया हुआ है? लेकिन मुझे इस तर्क पर संदेह है और अधिक संभावना यही लगती है कि निष्क्रियता के चलते ऐसा है। राज्यों के पास भूमि राजस्व कानून के तहत नए जिलों एवं अनुमंडलों के गठन की समुचित शक्ति है। ऐतिहासिक रूप से यह निष्क्रियता अविभाजित बंगाल में बने भूमि राजस्व नियमों से उपजी है।

राज्यों के पास जिलों के गठन की शक्ति होने से जिलों की संख्या लगातार बदलती रहती है। वर्ष 2001 की जनगणना में देश में 593 जिले थे लेकिन 2011 की जनगणना में यह संख्या बढ़कर 640 हो गई थी। वर्तमान में इनकी संख्या 700 को भी पार कर चुकी है। विकास के किसी भी पैमाने से देखें तो इनमें से कुछ जिले विकसित हैं जबकि कुछ जिले मूल सुविधाओं से भी वंचित हैं। अभी आकांक्षी जिला कार्यक्रम चल रहा है जिसमें मार्च 2018 को आधार मानते हुए 115 पिछड़े जिलों का विकास किया जाना है। इस तरह का निर्धारण नया नहीं है। वर्ष 2003 में लवीश भंडारी के साथ मैंने एक पुस्तक 'नई सहस्राब्दी में जिला-स्तरीय वंचना' का संपादन किया था। शंकर अय्यर ने इस तरह के निर्धारण के इतिहास पर एक शोध पत्र भी लिखा था। उनका कहना था कि अब तक 11 समितियों ने पिछड़े जिलों के निर्धारण का काम किया है। इनके अलावा पिछड़े जिलों की कुछ तदर्थ सूचियां भी बनी थीं। भले ही इन सूचियों में भिन्नताएं थीं लेकिन सभी सूचियों में कुछ जिले समान थे जो स्वतंत्रता के बाद से ही पिछड़े और आकांक्षी बने हुए हैं।

जब हम राज्यों के बीच असमानताओं के बारे में सोचते हैं तो कई बार उसकी वजह बड़े राज्यों के भीतर की अंदरूनी असमानता भी होती है। बड़े राज्य अमूमन अधिक विविधताओं वाले होते हैं। पीछे छूट चुके जिले छोटे राज्यों की तुलना में बड़े राज्यों के विकास की रफ्तार को अधिक प्रभावित करते रहे हैं। राज्यों का सीमांकन ऐतिहासिक एवं प्रशासनिक कारणों से हुआ था और वे विकास एवं वंचना की परिसीमा का सम्यक अनुसरण नहीं करते हैं। हमें राज्यों से परे जिलों पर ध्यान देने की जरूरत है। आधे जिले औसत से थोड़ा बेहतर स्थिति में हैं (अगर मैंने यह कहा होता कि आधे जिले औसत से नीचे हैं तो लोग नाराज हो जाते)। जिलों को समझने के लिए जिला गजेटियर सूचना के भंडार हैं। गजेटियर

में अत्यधिक महत्त्व की सूचनाएं होती हैं। उनकी महत्ता इसी से समझी जा सकती है कि प्रधानमंत्री ने लोकसभा में 28 अप्रैल, 1965 को दिए गए अपने भाषण में कच्छ के रण को भारत का हिस्सा बताने के लिए विभिन्न गजेटियर से प्राप्त सूचनाओं का जिक्र किया था।

लिहाजा गजेटियर चाहे वे जिला, राज्य या केंद्र के हों, असल में राष्ट्रीय पूंजी हैं। इसमें शोध की भी काफी गुंजाइश है। स्वीडन स्थित अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजी केंद्र ने इस तरफ इशारा करते हुए कहा है, 'भारतीय गजेटियर भारत के इतिहास एवं संस्कृति से जुड़े सभी अध्ययनों के लिए सूचना का जरूरी स्रोत होने के साथ ही शोध सामग्री के अतुलनीय संग्रह हैं।' रायबरेली जिला गजेटियर की वेबसाइट पर कहा गया है कि 'कुछ देशों के दस्तावेज संकलन केंद्रों ने नए एवं पुराने गजट की समूची शृंखला की माइक्रोफिल्म बनाने पर बड़ी धनराशि खर्च की है। अब इस बात को दूसरे देशों में भी स्वीकार किया जा रहा है।' मुझे हमेशा इस बात पर ताज्जुब हुआ है कि अधिक जिलों ने अपने गजेटियर क्यों नहीं तैयार किए हैं? ये तो जानकारी के खजाने हैं।

कुछ जिलों के गजेटियर पुराने हैं तो कुछ नए बनाए गए हैं। 'पुराना' होने का मतलब यह है कि ये गजेटियर उपनिवेश काल में 1870 के बाद से शुरू होकर 1930 तक के हैं। वहीं 'नये' गजट का मतलब है कि उन्हें आजादी के बाद आकार दिया गया। महाराष्ट्र और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों ने आजादी के बाद भी गजेटियर के नए संस्करणों का प्रकाशन शुरू किया था। गजेटियर के प्रकाशन को 1957 में राष्ट्रीय परियोजना के तौर पर शुरू किया गया। सभी राज्यों को अपने गजट प्रकाशित करने थे और उनके पास गजेटियर विभाग भी होने चाहिए थे। पहली बात तो पूरी तरह सच है लेकिन दूसरी बात नहीं क्योंकि कुछ राज्यों में ही गजेटियर विभाग मौजूद हैं। अधिकतर लोग इससे सहमत होंगे कि ब्रिटिश सूचनाओं के अंकन में शानदार थे और मेरी निजी राय है कि औपनिवेशिक काल के पुराने गजेटियर की गुणवत्ता नए गजेटियर से बेहतर थी।

में सभी राज्यों के पुराने गजेटियर नहीं हासिल कर पाया हूं। लेकिन कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, मध्य प्रदेश, ओडिशा, महाराष्ट्र और पंजाब के गजेटियर मुझे मिले हैं। मुझे नहीं लगता है कि मेरे पास मौजूद गजेटियर भी अपने आप में पूर्ण हैं लेकिन अपने स्तंभों में साझा करने लायक पर्याप्त जानकारियां उनमें भरी पड़ी हैं। ऐसी ही एक जानकारी विलुप्त हो चुकी सरस्वती नदी से संबंधित है। 'कहा जाता है कि यमुना पहले पुरानी सरस्वती नदी के अपवाह मार्ग पर ही प्रवाहित होती थी और घग्गर नदी की एक सहायक नदी होती थी। घग्गर अपने आप में एक सशक्त एवं स्वतंत्र नदी प्रणाली थी जिसकी धारा हकरा (पुरानी सरस्वती) नदी की तलहटी से बहती थी। अनजान कारणों से यमुना-सतलज जल-विभाजक का स्तर ऊंचा हो गया जिससे इस नदी प्रणाली में विभाजन हो गया। यमुना पूर्व दिशा की ओर मुड़ गई जबकि घग्गर नदी प्रणाली की सहायक नदी सतलज का प्रवाह पश्चिम की ओर होने लगा।' इतिहास में रुचि रखने वाले लोग इस तरह की धारणा से परिचित हैं। मुझे यह काफी रोमांचित लगा कि 1883-84 के रोहतक के गजेटियर में इसका जिक्र है।

Date: 28-08-18



सीमित सोच का संकट

संपादकीय

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी के विचारों से असहमति रखते हुए भी इन दिनों अपने विदेश प्रवास में वह जिन सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों को उठा रहे हैं, उन्हें एक सिरे से खारिज भी नहीं किया जा सकता। जर्मनी और लंदन में उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, 1984 के सिख विरोधी दंगों और मोदी सरकार के कामकाज के तरीकों पर बहुत ही बेबाकी से अपने विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने लंदन स्थित “इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्ट्रेटैजिक स्टडीज” में आयोजित एक कार्यक्रम में संघ की तुलना मुस्लिम ब्रदरहुड से की है, जिस पर भाजपा के भीतर तीखी प्रतिक्रिया हुई है। मुस्लिम ब्रदरहुड की स्थापना 1928 में मिस्त्र में हुई थी। पिछले कुछ वर्षों से कांग्रेस संघ के खिलाफ भगवा आतंकवाद जैसे कठोर और आक्रामक शब्दों का इस्तेमाल करती आ रही है। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए राहुल ने संघ के साथ मुस्लिम ब्रदरहुड की तुलना की है। दोनों संगठनों की प्रकृति में कुछसमानताएं भी हैं। मसलन, संघ की तरह मुस्लिम ब्रदरहुड भी अपने को सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन होने का दावा करता है। संघ की स्थापना हिन्दू समाज के हितों की रक्षा के लिए हुई है, तो मुस्लिम ब्रदरहुड के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका मकसद इस्लाम के नैतिक मूल्यों का प्रसार-प्रचार करना है।

यह संगठन लोकतांत्रिक सिद्धांतों में निष्ठा व्यक्त करता है। लेकिन देश का शासन इस्लामी कानून यानी शरियत के आधार पर चलाने का समर्थन करता है। हालांकि 2013 में इसको आतंकी संगठन घोषित कर दिया गया है। लेकिन संघ के साथ ऐसा नहीं हुआ है। शायद राहुल की मंशा है कि संघ के साथ विश्व समुदाय उसी तरह का व्यवहार करे जिस तरह से मुस्लिम ब्रदरहुड के साथ किया है। लेकिन राहुल के कथन के संदर्भ में बड़ा प्रश्न है कि 70 साल के कार्यकाल में कांग्रेस ने ऐसा क्या किया है, जिससे मुसलमानों में मुस्लिम ब्रदरहुड जैसे संगठन न उभरें और हिन्दुओं के बीच से कट्टर संघवाद न उभरे। कट्टरता के विरुद्ध जो सबसे बड़ा हथियार भारत के पास था, वह संविधान स्वीकृत धर्मनिरपेक्षतावाद था। मगर कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता की एकतरफा व्याख्या करके दोनों ही समुदायों में कट्टरपन को उभरने का अवसर मुहैया कराया है। दुखद यह है कि राहुल के पास इस कट्टरपन से लड़ने का न कोई विचार है और न संगठन। काश राहुल विश्व मंच से इस संदर्भ में अपनी और कांग्रेस की कोई स्पष्ट रणनीति की घोषणा कर पाते।

How dams can control floods

There should be space for greater storage of water in reservoirs before the onset of monsoon

Mathew Abraham, (Mathew Abraham is a Principal Scientist (retired) from the Indian Council of Agricultural Research)



In the aftermath of any tragedy, people struggle to comprehend what happened and how to cope. Kerala is no different. With the floodwaters finally receding, a number of experts and politicians have stated various possible reasons for the tragedy. Some have cited ill-thought-out development plans that have affected the sustainability of the Western Ghats, arguing that without thoughtful conservation, this was a tragedy waiting to happen. Some have said that the rainfall was unprecedented. Some others have said that Kochi airport was bound to flood given that it has been built on fields and

wetlands adjacent to the Periyar river which swelled to dangerous levels during the floods. And some have blamed dams, which were all opened when they were nearly full, causing heavy floods downstream and greatly affecting the lives of the people there. While criticism and suggestions are natural after a tragedy of this magnitude, we should learn lessons from the experience. The question is, how do we avoid or minimise destruction after such an event?

The purpose of dams

The world over, dams are constructed mainly for the purposes of irrigation, power generation, and flood control. While the first two roles are acknowledged, the role of dams in flood control has always been underestimated. It is unfortunate that in both irrigation and hydel projects, flood control is completely ignored. Authorities always look to store the maximum amount of water in reservoirs during the monsoon season, which is then used for irrigation and generation of electricity during the summer months. It is an internationally accepted practice that the water level of a reservoir should be kept below a certain level before the onset of the monsoon season. This is so that when the monsoon rains come, there is space to store the excess rainwater and also so that water can be released in a regulated manner, thus preventing floods downstream when there is heavy inflow to the dams. In May, Thailand, for instance, wisely brought down the water level in the dams in the country to below 60% of the storing capacity before the rainy season.

However, it is unfortunate that the maximum amount of water is stored in reservoirs even before the close of the monsoon, only to ensure greater electricity generation and irrigation. How the reservoir water was managed in the dams prior to the Kerala floods requires no explanation. While earlier too there was no practice of keeping space for greater storage of water, rainfall has never been as torrential as it was this year. Hence, there were no floods either. It is difficult to predict what will happen during the

ensuing northeast monsoon in Kerala in case of heavy inflow. Whatever be the extra quantity of electricity produced and area of land irrigated because of the risky storage of water in our dams, that cannot compensate for the loss of human lives, infrastructure and agricultural land. Nor can the agony caused by such destruction be compensated for. The estimated loss to the State runs into thousands of crores. It will take years to rebuild Kerala.

Space in reservoirs

In view of all these problems and to ensure that the flood control purpose of dams is met, it is important that at least 30% of the storage capacity of dams be kept free before the monsoon. While simultaneously allowing discharge of water, it is possible to increase storage slowly as the monsoon progresses. Kerala receives rainfall mainly during the southwest monsoon (June-September) and northeast monsoon (October-November). These rains are controlled by winds that carry clouds from the Arabian Sea and the Bay of Bengal. Atmospheric depression that controls wind movement cannot be predicted months in advance. The meteorological department can predict rains or cyclones only a few days in advance.

Therefore, keeping space in reservoirs before the monsoon begins must be done whether or not there are heavy rains, as no State can afford to take risks in the manner that Kerala did. Some argue against the existence of dams, but it is an irrefutable fact that dams are useful. We need them for irrigation and electricity generation. However, even if the monsoons fail and dams fall short of water and there is a shortfall in electricity generation, this is not a loss compared to the possible loss of lives in the event of a flood of this magnitude.

Ensuring thoughtful policies

It is time for the government and the public to formulate water management policies for reservoirs in such a manner that dams are used to control floods, not cause them. In 2015, hydropower generation was only 16.6% of the world's total electricity production. The tendency to hold the maximum amount of water in our reservoirs while ignoring the high risk involved in doing so can be attributed to our over-dependence on hydel projects to produce electricity. Therefore, it is time to think of non-conventional sources for electricity generation such as solar, wind and tidal power. The practice of solar power generation in Kochi airport can be copied in similar large-scale projects by other government agencies. The public too should be encouraged to adopt the practice of solar power generation. This will greatly reduce our dependence on dams for power generation.

It is also crucial to follow good reservoir water management policies. At present, the task of dam and water management is vested with the Public Works Department, the Electricity Board, and the Irrigation Department. Even in normal conditions, given contradictory opinions from various departments, it is difficult to implement decisions. Hence, the State Dam Security Authority, if competent, should be entrusted with the task of water management in reservoirs and with taking decisions in emergency situations.

The State government, the State Dam Security Authority and the National Water Commission should all be prepared to take bold decisions together on water management so that there are no such devastating floods in the future. If this happens, we hopefully won't see another day where we rue decisions of the past that are causing untold suffering to millions in the present.

Date: 28-08-18

Rescue, relief and renewal

The Kerala model of disaster management shows how we can rethink our style of governance.

Shiv Visvanathan, (Shiv Visvanathan is an academic associated with the Compost Heap, a group in pursuit of alternative ideas and imagination)

Disasters as narratives tend to follow a predictable grid. They begin with a moment of scandal or crisis, move to limited period of action, and slowly fade into indifference. People get tired of consuming disasters and move on. Policy echoes the usual clichés and fades away, only the victim continues to struggle fighting to recover her sense of citizenship. But disasters as narrative clichés eluded the Kerala floods of 2018.

Leading from the front

The Kerala flood has been huge in scale and almost unprecedented. One has to go back to 1924 to think of a flood of a similar scale. Yet this is one disaster that has avoided exaggeration. A wise observer, in fact, said, “This is a flood that has avoided sentimentality. The response is realistic and pragmatic. Citizens have moved into action and yet they knew the limits of aid and relief.” Central to this, in style and leadership, is the role of Kerala Chief Minister Pinarayi Vijayan, who has been a hands-on administrator. Interestingly, he has set a style emphasising concern with no self-denial, a clear-cut statement of the scale of the problem and the long-range effort required to address it. Mr. Vijayan has no time for blame games or electoral politics. His even-tempered handling of the Centre and the southern States reflects a maturing of leadership. By avoiding nitpicking, he has brought a new maturity to the discourse on floods. There are no blame games but he is clear about the chain of responsibility. He has signalled that his concern is with people first, regardless of ideology or religion.

He has made sure that relief is not parochialised or seen through a party lens. He might be of the Communist Party of India (Marxist), or CPI(M), but he has convincingly acted as the Chief Minister of Kerala. All the malignant rumours spread by the right wing asking people to deny aid to Kerala as it helps missionaries leave him cold. He is clear about focus and priority, clear that this is not the time for electoral bickering or factional politics. The very style of Mr. Vijayan’s presence has opened up the discourse. The debate now is not a short-run narrative about relief, but a larger discussion on the flood as a metaphor for Kerala’s development. People are listening to each other. One saw it when Madhav Gadgil, our leading ecologist, argued that heroism is not enough. The Kerala flood has to be read also as a man-made disaster. It could not be dismissed as originating in excess rain.

Mr. Gadgil, people realised, was raising a set of long-range questions about the nature of Kerala’s development which both the CPI(M) and the Congress have been party to. The general response was open-ended because the audience realised that he was not arguing for his report. What he was looking at is the mitigation of future suffering. Politics and science met to create this mutual responsibility for the future. The power of the narrative is that timelines were established, and timelines also defined the nature of responsibility. The quality of the debate, in fact, borrowed from the tenor of the response of the

people. Kerala responded with dignity and courage. Over a million people went to temporary camps, realising that their houses had been destroyed or damaged.

A social solidarity

The responses, especially of older people, added to the dignity of the discourse. Kerala did not behave like a victim population. It insisted on agency and created the ground for citizenship. Keralites outside the State responded immediately; and between the style of governance and the spirit of voluntarism, Kerala created a social solidarity which was almost unique. People owned up to each other and voluntarism added a powerful sense of competence and sympathy. It is this exemplary notion of citizenship that set the contours of the debate. The survivor and the victim insisted that they are citizens, and this elaboration of citizenship in disaster situations makes Kerala an exemplar of a democratic imagination. Suffering found a language beyond the political economy, but suffering also found a long-range locus in ecology and development. The flood became not an act of god or nature, but a social event to be analysed sociologically. Even if the Centre responds locally and parochially, the Government of Kerala realised that in the long run, floods not only challenge the democratic imagination but ask us to reconsider the future of federation. When there were suggestions from West Asia of a grant beyond the Centre's dreams, the Bharatiya Janata Party (BJP) regime at the Centre refused. The question was whether old dreams of statist autonomy could be questioned or does foreign aid still carry that touch of stigma. Sadly, the BJP goes ecstatic over NRIs in Silicon Valley but understands little of their role in the political economies of the Gulf States.

But more than state, what was renewed was a sense of the social. There was a recognition that the floods have erased the Kerala of the last phase. A new society has to be invented to replace the old. The standard disaster narrative of rescue, relief, rehabilitation is yielding to rescue, relief, reconstruction. Mr. Vijayan is clear that a new Kerala reflecting on ecology and development has to be invented. The old resilience has to be backed by a new infrastructural sustainability. As Mr. Vijayan himself said, during the 1924 flood there was one dam, "while today there are a total of 82 dams, including 42 major ones". New forms of control and sustainability have to be invented. Behind it there was a sense that governments must use disasters as moments of paradigmatic change. To build infrastructure of the kind Kerala need will take at least two decades. A flood becomes an initiation to rethink democracy and governance, reconnecting it to issues of environment, culture and livelihood. Yet there are issues still to be worked out. Mr. Gadgil is right. One needs an ecological insight both as a moral and economic imagination. Nature has to be rethought as an act of trusteeship. Its force and fury have to be understood. A survivor was cited as claiming that the river has reclaimed its lost self. Maybe it is time Kerala, which combines traditional and global in creative ways, rethinks its lost ecological self beyond consumption and the amnesia of development.

Learning to remember

Finally, one has to emphasise the biggest danger, one of the greatest faults of the old model of disasters. For all their scale and the scandals of new ideas they raise, disasters as policy memory are forgotten too easily. Old lessons are never learnt and new ones also forgotten. A disaster as a narrative must possess the quality of storytelling. Like a fable it must be repeated again and again, retold and rethought. The storyteller and the policy-maker must weave a new tapestry where the floods renew and rebuild a new Kerala. Talk of suffering has to be translated into new models of justice. One hopes Kerala creates new panchayats of the mind to work on this problem.

Date: 28-08-18

Rewriting history

Why is Akbar being called the new age Aurangzeb?

Ziya Us Salam

We live in an age when we appear to be forgetting the unifying message of “Saare Jahan Se Achcha”, powerful words penned by Muhammad Iqbal. Is there an exclusionary politics at play leading to the creation of a world of ‘us’ and ‘them’? Of Saffron Flags and Skullcaps traces the growth of the Hindutva ideology from the time of Veer Savarkar and M.S. Golwalkar to contemporary times, and describes how the Muslim community in India is now undergoing a churning within. An excerpt:

None of us has ever met Akbar. All of us know him well though. After all, he was Akbar the Great, the man who gave us a stable administration for close to 50 years — it was a no mean accomplishment considering [that] before him, north India had at least five rulers in 25 years, with wars for conquest as also succession being a frequent phenomenon. Through a mix of military prowess and acumen, Akbar brought stability at the top. Having defeated the top Rajput kings, including Rana Pratap, he brought the Rajputs virtually into the ruling class through matrimonial alliances with them. A man way ahead of his times, Akbar respected each individual’s right to practise any faith.

Even marriage to the emperor did not mean a change of religion for Rajput women. Of course, he sought to give the nation a glue-like concept of Deen-e-Ilahi, a new religion incorporating concepts from all religions. A contemporary of Akbar, Fr Monserrate, a Jesuit, opined that by tolerating all faiths, Akbar was dismissing all religions. He was a hero none could hate.

Portrait of Akbar

Fortunate are we who were told these realities of a shared past in our school days. It is courtesy our NCERT books that all Indians have a ready and enviable portrait of Akbar. Akbar was always held at par with the best. And an expression ‘Akbar the Great’ is indelibly written on our mind, much like ‘Ashoka the Great’. The next generation, though, may not be as fortunate. Efforts are under way to project Akbar as a diminutive ruler who lost the Battle of Haldighati to Rana Pratap. In turn, Rana Pratap is being hailed as the man who inspired the revolutionaries of 1857! Not just that. All accomplishments of Akbar are being questioned in a sinister manner.

In early 2017, an attempt was made to rename Akbar’s Fort in Ajmer as just Ajmer Fort by erasing his name from the gate of the fort. That it went against what the Gazette of India said seemed to matter little. Within no time, a new blue board was put up at the fort without a mention of Akbar. The fort, it seems, sprouted after rainfall in monsoon. If we believe Abul Fazl, the structures within the fort were constructed in 1570. It remained an important fort under Jahangir who also stayed there for long periods as Prince Salim.

Turning a story on its head

Not content with rewriting the Akbar ka Quila story, the Hindutva brigade got support from dubious historians to turn the good old Battle of Haldighati story on its head. Generations of students have talked of the valour of the Rajput king Rana Pratap, yet always concluded that for all his bravery, Rana Pratap lost the Battle of Haldighati to the Mughals. Importantly, Akbar is said to have stayed away from the battle himself, leaving the responsibility to Rajputs such as Man Singh. An attempt is being made by the Rajasthan government to rewrite textbooks where Rana Pratap, not Akbar, is declared the winner of Haldighati. That the claim flies in the face of historical evidence matters not a dot; it is perception rather than reality which matters. Akbar is the new age Aurangzeb — a man dubbed an invader by none other than the Uttar Pradesh Chief Minister, Yogi Adityanath. Of course, the fact that Akbar was born in Amarkot was considered superfluous to the argument.

Undermining Akbar's contribution

These attempts to project Akbar in a sad state are not new. For the past four years, constant efforts have been made to belittle his contribution to the country. In May 2016, a proposal was aired to rename Akbar Road in New Delhi as Maharana Pratap Road. What was said was obvious — give the Rajputs a place of honour; what was left unsaid was critical and objectionable — the greatest of Mughals had no business having a road named after him in Delhi, which was once an important component of his empire. The Indian government seems keen to undermine the contribution of Akbar towards nation-building and indeed project him as the New Age Aurangzeb.
